आत्म जागृति-माला पुष्प ४

ॐ

समकित (आत्म-बोध) प्रश्नोत्तर

अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

[भाग १]

समकित श्रेष्ठ स्वभाव, अनुपम रस का सिंधु है।
नाशक मिथ्या भाव, मूछित जन हित अमृत सम ॥

प्रकाशक—

सोभागमल अमोलकचन्द लोढा } मानद मंत्री
तथा मगनमल कोचेटा

आत्म जागृति कार्यालय,
बगडी (मारवाड), वाया सोजतरोड

महावीर जयन्ती
सं० १९८४

वी० सं० २४५४

बाबू मथुराप्रसाद शिवहरे के प्रबन्ध से
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित

समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर

इस पुस्तक का दूसरा भाग तैयार होरहा है । दोनों भागों की पुस्तक जिन महाशयों को प्रभावना के लिए मोल मगाना हो वे कार्यालय मे मगालें । जल्दी के कारण भूलों के लिए क्षमा करें ।

जयनारायण दयाल
व्यवस्थापक

भूमिका.

चारित्ररूपी शरीर में चैतन्यरूप समकित गुण है । इसका वर्णन करने की शक्ति इस अल्पज्ञ लेखक में नहीं है । तथापि बालभाव से समकित प्रश्नोत्तर लिखने का साहस किया गया है । इसमें अगणित भूलें दृष्टि-गोचर होवेंगी । सुज्ञ पाठक प्रत्येक भूल को नोट करके व्यवस्थापक के पास भेज देवें जिससे पुनः सुधार करने का प्रयत्न किया जावेगा और लेखक के ऊपर भी उपकार होगा ।

समकित का विषय इतना आवश्यक व विशाल है कि इसके ऊपर अनेक समर्थ विद्वान् प्रकाश डालें तब कुछ बोध हो सकता है ।

आज इसकी प्राप्ति की स्वतन्त्र पुस्तकें भाषामें थोड़ी मिलती हैं जिससे यह मंद प्रयत्न किया गया है । यदि अन्य विद्वान् लोग कृपाकर इस विषय को हाथ में लेंगे तो बहुत उप-कार होगा ।

यदि यह पुस्तक समाज को हितकारी मालूम पड़ेगी तो आगे विशेष प्रयत्न करने का यथाशक्ति यथायोग सद्‌भाग्य समझा जायगा।

इस समकित प्रश्नोत्तर में जो उत्तमता है वह महापुरुषों की प्रसादी लेकर धरी है और कोई स्थान में त्रुटि मालूम पड़े तो वह लेखक का प्रमाद जान सुधारने का अनुग्रह करें।

यह प्रयत्न स्व-पर हित बुद्धि से किया गया है। प्रथम निज आत्मा को ही अनेक शास्त्र व ग्रंथ से समकित स्वरूप शोधने का उत्तम लाभ हुआ है तथा समकित का विषय पुष्ट करते स्व-आत्मा में इस गुण की शुद्धि की आशा है पश्चात् जिज्ञासु आत्माओं को भी लाभ होने की आशा है।

संग्रहकर्ता—
एक समकित प्रेमी.

समकित की महिमा।

१—यह सम्यग्दर्शन महारत्न समस्त लोक का आभूषण है और मोक्ष होने पर्यन्त आत्मा को कल्याण देने वालों में चतुर है।

२—इस सम्यग्दर्शन को सत्पुरुषों ने चारित्र और ज्ञान का बीज अर्थात् उत्पन्न करने का कारण माना है, क्योंकि इसके विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता ही नहीं, तथा यम (महाव्रतादि) और प्रशम (विशुद्ध भाव) का यह जीवनस्वरूप है। इस सम्यग्दर्शन के विना यम व प्रशम निर्जीव के समान हैं। इसी प्रकार तप और स्वाध्याय का आश्रय है। इसके विना ये निराश्रय हैं। इस प्रकार जितने शम दम बोध व्रत-तपादि कहे हैं उनको यह सफल करता है। इसके विना वे मोक्ष फल के दाता नहीं हो सकते हैं।

३—यह सम्यग्दर्शन चारित्रज्ञान के न होने पर भी प्रशंसनीय कहलाता है और इसके विना संयम (चारित्र) और ज्ञान मिथ्यात्व रूपी विष से दूषित होते हैं अर्थात्

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के विना ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र कुचारित्र कहाता है।

४—सम्यग्दर्शन सहित यम नियम तपादिक थोड़े भी हों, वो उन्हें सूत्रके ज्ञाता आचार्यों ने संसार से उत्पन्न हुए क्लेशदु खों के लिये रामबाण औषधि के समान कहा है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन के होते हुए व्रतादिक अल्प होवें, तो भी वे संसारजनित दु खरूपी रोगों को नष्ट करने के लिये दिव्य औषध के समान हैं।

५—आचार्य महाराज कहते हैं कि—जिसके निर्मल अतीचार रहित सम्यग्दर्शन है वही पुण्यात्मा वा महा भाग्य-युक्त है, ऐसा मैं मानता हु, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का मुख्य अंग कहागया है। मोक्ष मार्ग के प्रकरण में सम्यग्दर्शन ही मुख्य कहा गया है।

६—इस जगत् में जो जीव चारित्र और ज्ञान के कारण सदा जगत् में प्रसिद्ध हैं, वे भी सम्यग्दर्शन के विना मोक्ष को नहीं पाते।

७—आचार्य महाराज कहते हैं कि, हे भव्य जीवो! तुम सम्यग्दर्शन नामक अमृत का पान करो। क्योंकि य-

सम्यग्दर्शन अतुल्य सुख का निधान (खजाना) है। समस्त कल्याणों का बीज अर्थात कारण है। ससार रूपी समुद्र से तारने के लिये जहाज है। तथा इसको धारण करने वाले एकमात्र पात्र भव्य जीव ही हैं। अभव्य जीव इसके पात्र कदापि नहीं हो सकते। और यह सम्यग्दर्शन पापरूपी वृक्ष को काटने के लिये कुठार (कुल्हाडे) के समान है, तथा पवित्र तीर्थों में यही प्रधान है अर्थात् मुख्य है। और जीत लिया है अपने विपक्ष अर्थात् मिथ्यात्वरूपी शत्रु को जिसने ऐसा यह सम्यग्दर्शन है अत भव्य जीवों को सबसे पहिले इसे ही अगीकार करना चाहिये।

छप्पय

सप्त तत्व षट् द्रव्य, पदारथ नव मुनि भाखे।
अस्तिकाय सम्यक्त्व, विषय नीके मन राखे॥
तिनको साचे जान, आप पर-भेद पिछानहु।
उपादेय है आप, आन सब हेय बखानहु॥
यह सरधा साँची धारकै, मिथ्या भाव निवारिये।
तब सम्यग्दर्शन पायकै, थिर ह्वै मोक्ष पधारिये॥

दोहा

सुख अनत की नींव है, सम्यग्दर्शन जान,
याही ते शिव पद मिले, भैया लेहु पिछान।

सम्यग्दर्शन अंक है, और क्रिया सब शून्य,
अंक जतन करि राखिये, शून्य शून्य दश गुण ।

कवित्त

दर्शन विशुद्ध न होवत ज्यों लग,
त्यों लग जीव मिथ्यात्व कहावे ।
काल अनंत फिरे भव में,
महा दु:खन को कहिं पार न पावे ॥
दोष पचीस रहित गुणानुभव बुद्धि,
सम्यक् दर्शन शुद्ध ठहरावे ।
ज्ञान कहे नर सो ही बड़ा,
मिथ्यात्व तजी शिव मारग ध्यावे ॥

संग्रहकर्ता
समकित प्रेमी

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

समकित (आत्म-बोध) प्रश्नोत्तर
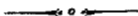
अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

(भाग—१)

मङ्गलाचरण

सिद्धाण नमो किचा संजायण च भावओ ।
अत्थ धम्मगइ तच्च, अणु सहि सुणे इमे ॥

आदि नाथ आदि दइ, वंदू श्री वर्धमान ।
स्याद्वाद वंदू सदा, प्रकटे अतिशय ज्ञान ॥१॥

श्री आदिनाथ—ऋषभदेव प्रभु से लगाकर श्री वर्धमान स्वामी तक सकल सर्वज्ञ वीतराग देवों को व स्याद्वाद (अनेकांतस्वरूप) जिन-वाणी को भावपूर्वक नमस्कार करता हू ।

स्याद्वाद अनेकांत धर्म कैसा है ? जो उत्कृष्ट आगम और सत्यसिद्धांत का जीव (प्राण) स्वरूप है अर्थात स्याद्वाद के बिना सकल शास्त्र जीव बिना के शरीर तुल्य होते हैं।

पुन स्याद्वाद कैसा है ? जन्म से अन्धे पुरुषों द्वारा कहे गये हाथी के स्वरूप रूप कथन (एकांतवाद) को निषेध करनेवाला व्यवहार व निश्चय दोनों पाँखों से सत्यज्ञान-रूपी आकाश में निर्भय गति करानेवाला है। ऐसे स्याद्वाद (अनेकांतधर्म) को मान-नमस्कार करने से अतिशय ज्ञान प्रगट होता है।

सकल अज्ञान अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य समान तीन लोक के समस्त पदार्थों को दिखाने के लिये अद्वितीय नेत्रस्वरूप उत्कृष्ट आगम जैन सिद्धान्त का परिश्रमपूर्वक मनन करके यह "समकित प्रश्नोत्तर" स्व-पर कल्याण हेतु गुरुकृपा से सग्रह करता हूं।

(१) प्रश्न—मोक्ष मार्ग किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिनके द्वारा सब प्रकार के दुःखों से सदा के लिये छूट जायँ उसे मोक्ष मार्ग कहते हैं। यह चार प्रकार का है (१) सम्यग् (सत्य) ज्ञान (२) सम्यक्

(सत्य) दर्शन (३) सम्यग् (सत्य) चारित्र (४) सम्यक् (सत्य) तप।

(२) प्रश्न—चारों में मुख्य कौन है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन अर्थात् समकित सब में प्रधान है। कारण कि समकित प्रगट होने पर ही सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र होता है। समकित के बिना दोनों ही मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र कहे गये हैं।

समकित अर्थात् सच्ची समझ, सद्विवेक, सुश्रद्धा के बिना भाषा-ज्ञान या दूसरी पढ़ाई खूब होने पर भी मिथ्या-ज्ञान ही कहा गया है। हजारों शास्त्र, विद्या, कला पढ़ा होवे तो भी यदि सद्विवेक न होवे वह उन्मार्ग (कुचारित्र) गामी हो सकता है और सच्ची समझपूर्वक थोड़ा भी ज्ञान व चारित्र हो वह सुमार्गगामी बन सकता है। इसलिये समकित ही सब गुणों में प्रधान गुण है।

(३) प्रश्न—समकिती जीव के क्या गुण हैं?

उत्तर—(१) शरीर, इन्द्रिय, भोग, विषय, कषाय प्रति अरुचि, त्यागबुद्धि हो, इन पर ममत्व न होवे।

(२) अतींद्रिय—(इन्द्रियरहित, विषयसुख के त्यागरूप) आत्मिक सुख का स्वाद आवे।

(३) स्वानुभूति—आत्मा के सत्य स्वरूप का अनुभव होना।

(४) शत्रु के भी गुण देखे, सदा समभाव रक्खे।

(५) विवेक बुद्धि होवे, क्या आत्मा को हितकारी है, क्या अहितकारी है, उसका ज्ञान करके सदा हितमार्ग में ही प्रवृत्ति कर, कभी अहित मार्ग में प्रवृत्ति न करे।

(६) दु खों के मूलकारण अज्ञान, मिथ्यात्व (अन्धता) विषय कषाय जान इनसे स्वय बचे व औरों को बचावे। यह भाव अनुकम्पा है।

(७) श्रद्धा—आत्मा के सत्यस्वरूप को नय, प्रमाण व व्यवहार निश्चय से समझकर सब बाह्य वस्तुओं से भिन्न मैं एक अनत ज्ञान सुखादिपूर्ण आत्मा हूँ, ऐसी दृढ श्रद्धा होवे और क्रमशः आत्मगुण घातक तत्वों (धन, भोग, विषय, क्रोधादि कषाय) को छोड़कर ही आनद माने।

(४) प्रश्न—समकित कैसा है ?

उत्तर—ससार समुद्र तरने के लिये चारित्र रूपी जहाज है, ज्ञान रूपी मार्ग दर्शक दिव्य दीपक है, समकित

रूपी खेवटिया (नाविक) है। समकित रूपी खेवटिया न हो तो सब साधन शून्य रूप हैं। जैसे बिना बीज के वृक्षकी उत्पत्ति, वृद्धि व फल नहीं होते, इसी प्रकार समकित (सच्ची समझ, सद् विवेक) रूपी बीज के विना सम्यक् ज्ञान, चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि भी नहीं हो सकती तथा उसका फल सत्य सुख (मोक्ष) नहीं मिलता। तथा समकित नींव के समान है। जैसे विना नींव के मकान नहीं ठहर सकता उसी प्रकार विना समकित के ज्ञान चारित्र नहीं ठहर सकते।

(५) प्रश्न—समकित गुणको रोकने वाला अंतरंग कारण क्या है ?

उत्तर—मिथ्यात्व मोहनीय है। मिथ्या अर्थात् खोटा मोहनीय अर्थात् राँचना, ममत्व करना। जो बात खोटी है उसमें रँचे, ममता करे सो मिथ्यात्व मोहनीय है। ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने का कारण मिथ्यात्व मोहनीय के कर्म-दल हैं। और पुनः ऐसी बुद्धि से मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का बंध होता है।

(६) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय से कैसी बुद्धि होती है ?

उत्तर—मिथ्या—अर्थात् विपरीत बुद्धि होना। जो अपनी चीजें नहीं हैं उन्हें अपनी माने। जैसे:-शरीर, इन्द्रियाँ, भोग, धन, परिवार, निंदा, स्तुति, सुख दुःख के सकल प्रसंग में ममता (अपनात) सो मिथ्यात्व है। ऐसे भावों से पुनः मिथ्यात्व का बंध होता है, इसलिये ऐसी बुद्धि छोड़ना चाहिये।

(७) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय से जीवकी उल्टी बुद्धि क्यों होती है?

उत्तर—जैसे नशीली चीज खाने से सयाना मनुष्य कुछ का कुछ बोलने लगता है, धतूरा का दूध पीने से सब पीला पीला दीखता है। यह वस्तु का स्वभाव है। उसी प्रकार मिथ्यात्व मोहनीय कर्म प्रकृति का स्वभाव जीवकी विपरीत बुद्धि करने का है।

(८) प्रश्न—वस्तु का स्वभाव ऐसा क्यों?

उत्तर—यह अनिवार्य है, स्वयं सिद्ध है, अग्नि उष्ण क्यों? जल शीतल क्यों? सूर्य उष्ण, प्रकाशमय क्यों? चन्द्रमा शीतल प्रकाश-मय क्यों?

इसका उत्तर क्या देंगे? उत्तर यही आवेगा कि वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है, इसमें प्रमाण व तर्क का

ो थान नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यात्व कर्म प्रकृति का फल
ा स्वभाव से ही ऐसा है कि जीव की विपरीत बुद्धि
ो जाती है।

(९) प्रश्न—कर्म क्यों माने ?

उत्तर—इस जगत् में कोई मनुष्य, कोई पशु, कोई पक्षी, कोई जलचर, कोई आकाशगामी जीव दीखते हैं, कोई कीड़े, मकोड़े, टीड़ी, पतंग आदि छोटे जीव हैं, कोई बुद्धिमान्, कोई मूर्ख, कोई बली, कोई दुर्बल, कोई सदा निरोगी, कोई सदा रोगी, कोई जन्म से धनवान्, कोई जन्म से निर्धन, कोई रूपवान्, कोई कुरूपवान्, कोई सुखी और कोई दुखी क्यों है ? उत्तर यही आता है कि जैसे कर्म-भूत पुरुषार्थ—गतकाल में काम किये, बीज बोये हैं, वैसे ही फल मिले हैं। विना कर्म सिद्धान्त माने जीवों की विचित्र दशाओं की सिद्धि ही नहीं होती।

(१०) प्रश्न—इन कर्मों को विना भोगे ही क्या छुटकारा हो सकता है ?

उत्तर—हां, कर्मों का छुटकारा दो तरह से होता है। जो कर्म-फल भोगे जाते हैं वे सविपाक निर्जरा कहाते हैं और जो कर्म-फल मिलने के पूर्व ही शुद्ध भाव से दान,

शील, तप, संयम व ध्यान से नाश होते हैं वे अविपाक निर्जरा कहाते हैं।

(११) प्रश्न—निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर—जृ-अर्थात् जीर्ण होना। विशेष प्रकार से कर्मों का नाश होना सो निर्जरा है।

१२) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म नाश हो सकती है?

उत्तर—यथार्थ रूप से नवतत्व व छः द्रव्यों का सात नय, चार प्रमाण, सामान्य, विशेष, द्रव्य, गुण, पर्याय, बाह्य, आभ्यन्तर, निश्चय, व्यवहार से, ज्ञान करके अपने आत्मस्वरूप को पहिचाने, निज आत्मा और अपने ज्ञान चारित्र आदि गुणों को ही अपने आदरने योग्य श्रद्धेय (माने) ऐसी समकित भावना से मिथ्यात्व (विपरीत बुद्धि) का नाश होता है।

(विशेष प्रकार से समकित भावना चिंतवन करना हो तो "आत्मजागृति भावना" और समकित "स्वरूप भावना" की पुस्तकें देखें)

(१३) प्रश्न—सच्चा जानना या झूठा जानना क्या ज्ञानावरणी कर्म का उदय है कि अन्य का?

उत्तर—सचापन या झूठापन ज्ञानावरण का उदय नहीं परन्तु मिथ्यात्व का उदय है। कारण ज्ञानावरण के तीव्र उदय से ज्ञान थोडा होवे तथा ज्ञानावरण के क्षयोपशम से ज्ञान ज्यादा होवे। उसमें सत्यपन या असत्यपन पैदा करने की शक्ति नहीं है, कारण ज्ञानावरण कर्म की सम्यग् ज्ञानावरण या मिथ्या ज्ञानावरण-ऐसी प्रकृति नहीं है। ज्ञानावरण अर्थात् ज्ञान का आवरण करे, ढाके उसे ही ज्ञानावरण कहते हैं। मिथ्यात्व का अर्थ उलटापन अर्थात् जो विपरीतपन उत्पन्न करे सो मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व जीव के ज्ञान, चारित्र, वीर्य आदि अनन्त गुणों को विपरीत करता है। मिथ्यात्व होवे वहाँ तक ज्ञान मिथ्याज्ञान, चारित्र मिथ्याचारित्र, सुख बाह्य (पुद्गलीक) सुख वीर्य कुपुरुषार्थ (बालवीर्य) रहता है। जब मिथ्यात्व नाश होजावे तब मिथ्याज्ञान आदि अनन्त गुण सम्यक्-सुलटे होजाते हैं।

(१४) प्रश्न—बहुत शास्त्र कण्ठस्थ होने पर भी समकित के विना मिथ्या ज्ञान होता है तो वह पदार्थ को किस प्रकार जानता है?

उत्तर—मिथ्या ज्ञान का अर्थ ऐसा न करें कि मकान को मकान न जाने, जीव को जीव न जाने। समकित

बिना अनेक शास्त्र के अर्थ भावार्थ तथा नय प्रमाण निक्षेप के विस्तृत ज्ञान से पदार्थस्वरूप खूब, बारीकी से समझे, बंध मोक्ष के स्वरूप को समझे, जगत् के पदार्थ और भावों को बराबर जाने । यह सब जानना जहां तक आत्मानुभव शुद्ध आत्मस्वरूप का निश्चय स्वानुभूति (स्वानुभव) न हो वहा तक मिथ्या माना गया है, कारण जो आत्मस्वरूप का अनुभव न होवे तो खीर की कढ़ाई की कुड़छी तुल्य शुष्क ज्ञान है । सब ज्ञान का सार एक आत्मस्वरूप का अनुभव करना ही है । अपना जीव अनंत-बार हजारों शास्त्र पढ़ चुका, केवल एक शुद्ध निज आत्म-स्वरूप का अनुभव नहीं करने से अज्ञानी रहा है । जो राग, द्वेष, मोह (दर्शन मोहनीय) को त्याग करे तो थोड़ा ज्ञान होते हुए भी आत्मानुभव कर लेता है । जगत् के सर्व जड़ चेतन पदार्थों का अपनी आत्मा से जुदे अनु-भव करे, अपनी निज आत्मा में आपको ही अनुभवे । इन्द्रियजन्य विषय सुख जिन्हें अतर से रोगरूप कडुए मालूम होते हैं, जो अविकारी अतीन्द्रिय निर्विकल्प आ-त्मिक सुख को भोगते हैं । जिस ज्ञान में आत्मा का निज स्वरूप प्रतिभासित होता है वही ज्ञान सम्यक ज्ञान है । ऐसा सम्यक ज्ञान होने पर दान देना, शील पालना, संयम पालना, तप करना कष्ट रूप नहीं मालूम होता।

न देना मल-त्याग रूप सुख देता है। सयम पालना वा सुख रूप प्रतीत होता है। तप अपूर्व आनन्द होता । शील खुजली के निरोगी को खुजालने की इच्छा न हो वैसे अपना स्वभाव समझ पालता है।

(१५) प्रश्न—समकित का लक्षण व स्वरूप क्या ?

उत्तर—(१) जीव अजीव आदि तत्वों का विपरीत मान्यता रहित जैसा स्वरूप है वैसा माने (श्रद्धा करे, निश्चय करे) व अनुभवे सो समकित अर्थात् आत्मदर्शन आत्मानुभव है।

(२) स्वानुभूति आत्मा के स्वरूप को अनुभवे वह समकित।

(१६) प्रश्न—समकित के लक्षण कई स्थान में भिन्न भिन्न बताये गए हैं तो कौनसा लक्षण ठीक है ?

उत्तर—कोई स्थान में व्यवहार समकित के लक्षण बताये गए हैं और कोई स्थान में निश्चय समकित के लक्षण बताये गए हैं। इसलिये शास्त्र में कहा है कि जो व्यवहार और निश्चय दोनों नयों के स्वरूप को बराबर

समझता है वही सत्य समझ सकता है तथा सत्य उपदेश दे सकता है अन्यथा कईवार हानि हाजाती है।

(१७) प्रश्न—व्यवहार समकित का क्या लक्षण है

उत्तर—व्यवहार समकित का लक्षण देव अरिहन्त गुरु निग्रंथ, संवर, निर्जरा में धर्म व स्याद्वाद युक्त शास्त्र को मान, सम् (समभाव), संवेग (धर्म भक्ति) निर्वेग (वैराग्य—भोग अरुचि), अनुकम्पा व जीवादि नवतत्त्व की यथार्थ श्रद्धा—आस्ता, ये पांच लक्षण तथा व्यवहार समकित के ६७ बोल के गुण व्यवहार लक्षण हैं।

(१८) प्रश्न—निश्चय समकित का लक्षण क्या है?

उत्तर—अन्तरंग में अनन्तानुबंधी (पर वस्तु को अपनी मानकर क्रोधादि करना) क्रोध, मान, कपट, लोभ, मिथ्यात्व मोहनीय (खोटे में आनन्द समझना), मिश्र मोहनीय (कुछ सत्य, कुछ असत्य में आनन्द), समकित मोहनीय (सत्य में किंचित् शंकादि दोष सेवन)। इन सात प्रकृति का अभाव करे और बाह्य में शुद्ध आत्मस्वरूप का अनुभव करे यह (स्वानुभूति) निश्चय समकित का लक्षण है।

(१६) प्रश्न—स्वानुभूति क्या चीज है ?

उत्तर—मतिज्ञानावरणी के पेटे की एक विशेष प्रकृति स्वानुभूति आवरण) नाम की प्रकृति है । वह हटने से स्वानुभूति, आत्मानुभव होता है । यह ज्ञान का गुण है, यद्यपि निश्चय समकित होवे तब ही होता है । जिससे समकित के लक्षण में भी बताया जाता है । जो शुद्ध आत्म अनुभव होने वहां निश्चयात्मक गुण है । वह समकित है ।

(२०) प्रश्न—कर्म प्रकृति तो १४८ या १५८ कही गई है जिसमें यह प्रकृति क्यों नहीं कही गई ?

उत्तर—आत्मा के असंख्य लेश्या, भाव, परिणाम होते हैं, उनमें जुदी २ कर्म प्रकृति का बंध होता है, कर्म की असंख्य प्रकृति (जातिया) हैं परन्तु मुख्य आठ हैं, जिन्हें आठ कर्म कहते हैं व उत्तर प्रकृति १४८ या १५८ कही गई हैं, कारण समझाने के लिये आवश्यक ही लेना पड़ता है । जैसा जीव के कर्म उदयानुसार अनन्त भेद हो सकते हैं तथापि ५६३ भेद ही कहे गये हैं, कारण समझाने के लिये कुछ मर्यादा व वर्ग करना ही पड़ता है । पुनः अनंत भेद जीव कह दिया है ।

(२१) प्रश्न—शास्त्र में किसी स्थान में आत्मा को जानना समकित है, ऐसा कथन है ?

उत्तर-हां अनेक स्थान में ये भाव निकलते हैं। तथा श्री पन्नवणा सूत्र, आवश्यक सूत्र व उत्तराध्ययन मोक्ष मार्ग अध्ययन में दर्शन—समकित का विवेचन करते चार लक्षण में पहला "परमत्थसंथवो वा" परम मानी प्र धान, अर्थ मानी तत्त्व। सर्व तत्त्व में एक निज आत्मा ही प्रधान तत्व है। उसका सस्तव करे, परिचय करे, अनुभव करे, ऐसा कहा गया है फिर भी श्री आचारांग सूत्र में फरमाया गया है कि "जो आत्मानुभव करते हैं वे अन्य स्थान में नहीं राँचते, नहीं रमण करते"। जो अन्य स्थान में नहीं राँचते वे ही एक आत्मा में राचते-रमण करते हैं। इसी न्याय से समकिती जान का धाय माता समान भिन्न अनुभव करने वाला कहा है। वह संसार में अपनापन नहीं करता तथा और भी श्री आचारांग सूत्र में फरमाया गया है कि "जो मूल कर्म—अग्र कर्म अर्थात् मिथ्यात्व को नाश करता है वह आत्म-दर्शन करता है और उसे मरण-भय नहीं रहता।

(२२) प्रश्न—तत्त्वार्थ श्रद्धान् समकित का क्या अर्थ है ?

उत्तर—तत्व कहे तो भाव (धर्म-स्वभाव सा वस्तु स्वरूप), अर्थ कहे तो पदार्थ। जिस पदार्थ

सचा स्वभाव (धर्म) है, उसका श्रद्धान् समकित है। कारण खाली अर्थ करे तो पदार्थ श्रद्धा में समकित मान लो यथार्थता सत्यता का विशेषण नहीं होने से विपरीत पदार्थ को मानने में भी समकित हो जावे। इसलिये यथार्थ वस्तु स्वरूप पदार्थ के निश्चय को ही समकित कहा है, सो बहुत ठीक है।

(२३) प्रश्न—जगत् में मुख्य तत्व कितने हैं?

उत्तर—दो। एक जीव और दूसरा अजीव।

(२४) प्रश्न—इन जीव अजीव के विशेष प्रकार से कितने प्रकार होते हैं?

उत्तर—एक अपेक्षा से छः भेद हैं, जिन्हें छः द्रव्य कहते हैं तथा दूसरी अपेक्षा से नव भेद हैं जिन्हें नव तत्व कहते हैं। ये सब प्रकार जीव अजीव की अवस्था (पर्याय) हैं।

(२५) प्रश्न—छः द्रव्य के नाम व गुण कहो।

उत्तर—(१) धर्मास्तिकाय का चलन सहायक गुण है। जैसे जल मछली को चलने में सहायक है, चलने की प्रेरणा नहीं करता, इसी प्रकार

जीव पुद्गल को गति करने में धर्मास्तिकाय सहायक है, परन्तु प्रेरक नहीं है।

(२) अधर्मास्तिकाय का स्थिर सहायक गुण है। जैसे ग्रीष्म ऋतु में थके हुए मनुष्य को वृक्ष की छाया बैठने में सहायक है, प्रेरक नहीं।

(३) आकाशास्तिकाय का जगह देना (अवकाश देना) गुण है। जैसे दूध में शक्कर, भीत में कीली को जगह होती है। ऐसे यह सब पदार्थों को रहने की जगह देता है। एक आकाश प्रदेश पर जीव पुद्गल के अनंत प्रदेश रखने की शक्ति विशेष है। यह खास स्वभाव है। जैसे छोटा भी जलचर जीव पानी में जीता है जब कि हाथी, सिंह, वगैरे डूब मरते हैं व बड़ा मच्छ भी पानी के बाहर मरजाता है। यह एक स्वभाव की विशेषता है।

(४) कालद्रव्य का वर्तना गुण है जिसके निमित्त से नये पदार्थ जूने होते हैं, जूने पदार्थ नये होते हैं।

(५) जीवद्रव्य के चार गुण अनत ज्ञान, अनत दर्शन, अनत आत्मिक सुख, अनंत आत्मशक्ति।

(६) पुद्गल द्रव्य- पुद् कहे तो मिलना, गल कहे तो गलना-बिखरना। जिसका गुण मिलना व बिखरना है जो सदा एकसा नहीं रहता इसके मुख्य गुण चार है, (१) वर्ण, (२) गध, (३) रस, (४) स्पर्श।

(२६) प्रश्न—कोई लोग, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु; इनको अलग अलग स्वतत्र (खास जुदे जुदे) तत्व मानते हैं सो कैसा है?

उत्तर—यह ठीक नहीं, कारण पृथिवी, जल, अग्नि, वायु अलग अलग स्वतत्र तत्त्व नहीं है। एक का दूसरा रूप बन जाता है। जैसे मिट्टी व जल के योग से वनस्पति बनती है वह अग्नि रूप हो जाता है। फिर पीछी वह अग्नि राख होकर मिट्टी बन जाती है। पानी उबलने पर भाफ बनकर वायु रूप हो जाता है। दो जाति की वायु (हाइड्रोजन व आक्सिजन) मिलाने से जल हो जाता है। एक परमाणु दूसरा रूप बनता है परन्तु कभी उसका

अस्तित्व सर्वथा नष्ट नहीं होता। यह जैन सिद्धांत आज सायन्स से सिद्ध हो चुका है और इसलिये सायन्स का मूल सूत्र यह हुआ कि किसी पदार्थ का सर्वथा नाश नहीं होता। सदा नित्य रहना, ऐसा कहा गया है। हरे चीज की अवस्था बदलती है। इसे पर्याय कहते हैं, जिस अपेक्षा से सब पदार्थ को अनित्य भी माने हैं। सारांश द्रव्य की अपेक्षा से पदार्थ नित्य हैं। अवस्था (पर्याय) की अपेक्षा से अनित्य हैं।

(२७) प्रश्न—ज्ञान से क्या लाभ होता है ?

उत्तर—वस्तु को बराबर समझने से राग, द्वेष हर्ष, शोक नहीं होता। कोई वस्तु में ममत्व (मेरापन) की बुद्धि नहीं होती। सदा समभाव रहता है। तथा पुद्गल में शरीर, धन, भोग, अन्न, वस्त्र, गहने, मकान, स्तुति, निंदा सब आजाते हैं, इनको मिलने बिखरने का स्वभाव वाले जानने वाला विवेकी मनुष्य इनमें मोह नहीं करता, कारण इन चीजों को नाशवान् बराबर जानता है और वह खूब दान देता है। कभी उसे लोभ नहीं होता, शुद्ध शील पालता है। कारण वह एक गटरखाने में दूसरे गटरखाने के संयोगरूप भोग निंदनीय व दुःख-भंडार मानता है। तपस्या खूब करता है, कारण शरीर व भोजन को जीव

साधन मानता है । शुद्ध भाव रखता है, कारण उसे रागद्वेप नहीं आता। इस प्रकार'छ' द्रव्य के बराबर ज्ञान होने से वीतराग भाव प्रकट होकर अनत सुख (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

(२८) प्रश्न—धर्म शब्द के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर—धर्म शब्द के अभिप्राय से अनेक अर्थ हैं । एक वस्तु का स्वभाव सो धर्म (वत्थु सहावो धम्मो) अर्थात् जो वस्तु को वस्तुपन में कायम रक्खे सो धर्म । जैसे जीवका धर्म उसके चार गुण अनत ज्ञानादि हैं । इन गुणों से ही जीव सर्व काल में जीवपने में कायम रहता है। दूसरा अर्थ-धर्म कहे तो जो जीव को दुःख में गिरते को बचाकर सुख में धारण कर रक्खे वह धर्म, अहिंसा, सत्य, दान, तप आदि जिनमे जीव सुख पाता है। यह धर्म जीव के परिणाम हैं अर्थात् चारित्र गुणकी पर्याय (हालत) है तीसरा अर्थ-धर्म अर्थात् कर्तव्य-फरज भी है। इन सब अर्थों में धर्मको एक गुण माना है । अब जैनशास्त्र में पारिभाषिक धर्म शब्द एक अजीव अरूपी तत्त्व का नाम भी कहा है जो चलने में सहायक है । यह एक सञ्ज्ञा-विशेष है। यहां इतना भाव मिला सकते हैं कि दोनों में

चलने में मदद देना तुल्य है, कारण अहिंसा आदि भाव धर्म से जीव ऊँची गति में चला जाता है।

(२६) प्रश्न—अधर्म शब्द के कितने अर्थ हैं।

उत्तर—जुदी जुदी अपेक्षा से अधर्म शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

(१) वस्तु का मूल स्वभाव दूषित होवे, विकारी होवे उस अधर्म कहते हैं। जैसे जीव का स्वभाव मूल गुण चार दूषित होवें तब (१) अज्ञान।

(२) मिथ्यात्व (कुदर्शन, अश्रद्धा)

(३) इन्द्रियजन्य सुख दु:ख, राग द्वेष (कुचारित्र)

(४) कुपुरुषार्थ (बालवीर्य), हिंसा, विषय, कषाय में प्रवृत्ति होना। इन चार कामों का अधर्म कहते हैं। धर्म से सुख शांति आनद रहता है जब कि अधर्म से जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय, चिंता आदि अनत दुःख भोगने पड़ते हैं

दूसरा अर्थ जो दुर्गति दुःख में गिरते हुए को नहा बचावे सो अधर्म, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयसेवन, तृष्णा, निन्दा, क्रोध, मान, कपट, लोभ, कलह आदि अठारह पापस्थान हैं वे अधर्म हैं। तीसरा-जो अधर्म रद तो कर्तव्य नहीं है। जो काम करने योग्य नहीं उस करना सो अधर्म। चौथा अर्थ—जैन शास्त्र में पारिभाषिक अधर्म शब्द एक अजीव अरूपी तत्व का भी नाम है। यह सत्ता विशेष है। स्थिर रहने में सहाय्य करे। यहाँ इतना मात्र मिला सकते हैं कि स्थिर रहने में सहाय्य देना तुल्य है, कारण मान अधर्म-हिंसादि कामों से दुःखपूर्ण संसार में ही जीव ठहरता है, ऊँचा नहीं जा सकता।

(३०) प्रश्न—नवतत्व क्या है ?

उत्तर—जीव और अजीव की हालत अवस्था अर्थात् पर्याय हैं। जीव का अजीव (कर्म) के साथ संबंध होने

से पुण्य पाप आश्रव व बंध होता है तथा संबंध छूटने से संवर, निर्जरा, मोक्ष होती है। इस प्रकार सब मिलकर नवतत्त्व होते हैं।

(३१) प्रश्न—जीवकी शुद्ध हालत (पर्याय) व अशुद्ध हालत (पर्याय) कौनसी मानी गई हैं ?

उत्तर—पुण्य, पाप, आश्रव, बंध, यह जीवकी अशुद्ध हालत है व संवर, निर्जरा तथा मोक्ष, जीवकी शुद्ध हालत है। अशुद्ध हालत संसार का कारण है व शुद्ध हालत मोक्ष का कारण है।

(३२) प्रश्न—नवतत्त्व का सामान्य लक्षण क्या है ?

उत्तर—(१) जीवका लक्षण शुद्ध अवस्था में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आत्मिक सुख, अनंत आत्मिक शक्ति। अशुद्ध अवस्था में अल्पज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान। अल्पदर्शन शक्ति या मिथ्यादर्शन। इंद्रियजन्य सुख दुःख, रागद्वेष, दानवीर्य अर्थात् कुपुरुषार्थ।

(२) अजीव का लक्षण—जड़—अचेतन।

(३) पुण्य—भाव पुण्य-शुभ परिणाम (विचार)। द्रव्य पुण्य-शुभकाम, शुभ कर्मदल व शाता के सयोग।

(४) पाप—भाव—अशुमपरिणाम (विचार)। द्रव्य पाप-अशुभ काम, अशुभ कर्मदल व अज्ञातकारी सयोग।

(५) आश्रव—भाव-शुभाशुभ परिणाम (विचार)। द्रव्य-शुभाशुभ काम-मिथ्यात्वँ, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग व शुभाशुभ कर्म दल का सचय होना।

(६) संवर—भाव सवर-शुद्धोपयोग, राग, द्वेष, मोह (मिथ्यात्व मोहनीय) रहित परिणाम। द्रव्य-मन, वचन, काया, पांच इंद्रिय पर सयम, अहिंसादि पाच व्रत, पाच समीति आदि।

(७) निर्जरा—भाव-शुद्धोपयोग (राग, द्वेष, मोह रहित परिणाम), धर्म ध्यान (शुक्ल ध्यान)। द्रव्य में-अनशन (उपवास), उणोदरी आदि बारह प्रकार की निर्जरा

के भाग व देशथकी अमुक अश मे कर्म दल का आत्मा से दूर होना।

(८) बंध—भाव-राग द्वेष मोह के परिणाम। द्रव्य-मन, वचन, काया की प्रवृत्ति तथा कर्मदल का जीव के प्रदेशों के साथ एक मेक होना।

(९) मोक्ष—भाव-परम विशुद्ध वीतराग परिणाम अकषायी, अजोगी, अलेशी अवस्था। द्रव्य में-स्थूल शरीर उदारिक, सूक्ष्म शरीर तेजस कार्माण शरीर व आठों ही कर्मों का सर्वथा क्षय होना।

(३३) प्रश्न—व्यवहार समकित के गुण क्या फायदा करते हैं ?

उत्तर—व्यवहार समकित निश्चय समकित का साधक है। व्यवहार समकित के गुण से श्रद्धान, वाचन, मनन व सम् संवेग आदि गुणों के द्वारा उत्कृष्ट भावना व पुरुषार्थ से निश्चय समकित प्रकट न हो तो भी व्यवहार समकित मे उच्च गति व आत्मा निर्मल तो अवश्य होती है। मिथ्यात्व में डूब कर अनन्त दुःखी होने के स्थान व्यव

द्वार समकित को सेवन कर भयङ्कर दुःखों से बचना हितकारी ही है।

(३४) प्रश्न—निश्चय समकित की पहिचान कैसे होती है ?

उत्तर—स्वानुभूति अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूप के अनुभव से निश्चय समकित जाना जाता है। जो अतींद्रिय (इंद्रिय विषयक सुख रहित) आत्मिक अविकारी निर्विकल्प सुख का अनुभव है, वह निश्चय समकित का लक्षण है।

(३५) प्रश्न—प्रकृति की अपेक्षा से समकित के भेद कितने हैं ?

उत्तर—चार। १ क्षायिक समकित। २ उपशम समकित। ३ क्षयोपशम समकित। ४ वेदक समकित। चार अनतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, और समकितमोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, इन सात प्रकृति का सर्वथा क्षय (नाश) करना जले बीजवत्–जैसे बीज की राख होने के बाद अकुर नहीं उगता उसी प्रकार सात प्रकृति अनत ससार भ्रमण कराने वाली हैं। उसके नाश होने के बाद पुनः वह न तो उत्पन्न होती है, न ससार में

भटकना पड़ता है। इसको क्षायिक समकित कहते हैं। उपशम समकित में इन सातों प्रकृति का उपशम होता है (ढक जाती है सत्ता के अन्दर रहती है)। जैसे भारी अग्नि मान प्रकृति में से कुछ प्रकृति का क्षय करे और कुछ उपशम (ढाक) कर सत्ता में रक्खे। उसे क्षयोपशम समकित कहते है। कुछ प्रकृति को क्षय करे और कुछ का उदय होय (वेदे) सो वेदक समकित है।

(३६) प्रश्न—विशेष प्रकार से समकित के कितने भेद है?

उत्तर—नव भेद हैं। क्षायिक और उपशम समकित, एक एक ही भेद ऊपर कहा उसी मुजब है। क्षयोपशम समकित के तीन भेद हैं।

(१) अनतानुबंधी चार कषाय का क्षय करे और दर्शन-मोहनीय की तीन प्रकृति का उपशम करे।

(२) अनतानुबंधी की चार और एक मिथ्यात्व-मोहनीय, इन पाच का क्षय करे और दो का उपशम करे।

(३) अनतानुबंधी की चार और एक मिथ्यात्व-मोहनीय तथा मिश्र-मोहनीय इन छ का क्षय

करे तथा एक समकित-मोहनीय का उपशम करे।

वेदक समकित में केवल एक समकित मोहनीय प्रकृति, वेदे। उसकी छः प्रकृति का क्षय करे, उपशम करे या क्षयोपशम करे। इसके चार भेद हैं।

(१) अनंतानुबंधी की चार और मिथ्यात्व व मिश्र-मोहनीय इन छः का क्षय करे और एक समकित-मोहनीय को वेदे सो क्षायक वेदक।

(२) छः प्रकृति को उपशमावे और एक को वेदे सो उपशम समकित।

(३) चार अनंतानुबंधी को क्षय करे, मिथ्यात्व व मिश्र को उपशमावे और समकित-मोहनीय को वेदे सो पहिली क्षयोपशम वेदक।

(४) चार अनंतानुबंधी और मिथ्यात्व-मोहनीय की एक, इन पाँचों को क्षय करे, एक मिश्र-मोहनीय को उपशमावे और एक समकित-मोहनीय को वेदे सो दूसरी क्षयोपशम वेदक।

(३७) प्रश्न—चारों प्रकार के समकित में यथार्थ तत्त्व श्रद्धा व आत्मिक सुख में न्यूनाधिकता होती है कि समानता ?

उत्तर—चारों ही समकित में स्थिति की अपेक्षा से भेद हैं, परन्तु निश्चय व अनुभव की अपेक्षा से कोई भेद नहीं है। स्थितिबंध कृत भेद होने से सम्यक्त्वों में स्थितियां भिन्न भिन्न हैं। अनुभाग-रसोदय कृत कोई भेद इन में नहीं है। सभी भेदों में आत्मा का निजस्वरूप के अनुभवसुख को देने वाला एक ही सम्यक्त्व गुण है। जैसे निर्मल जल में व कीचड़ जमे हुए जल में पड़ा हुआ रत्न बराबर प्रकाशता है। अंतर मात्र शुद्ध जल में का रत्न सदा प्रकाशता है जब कि जमे हुए कीचड़ के पानी का रत्न संयोगवशात् प्रकाश देता बंध भी हो सकता है, इसी प्रकार क्षायिक समकित शुद्ध जलवत् सादिअनंत (शुरू हुए वहां से सदा के लिये) कायम रहता है।

(३८) प्रश्न—चार प्रकार के बंध में फल देने वाला कौनसा बंध है ?

उत्तर—प्रकृति, स्थिति और प्रदेश तीनों बंध फल देने में व कोई गुणों का घात करने में समर्थ नहीं हैं। केवल

एक अनुभागबध–रसबंध जो कषाय से ही उत्पन्न होता है, वह फल देने में समर्थ है।

(३६) प्रश्न—समकित प्रगट करने का अतरग कारण कर्म प्रकृति की अपेक्षा से सात प्रकृति का अभाव है तो सात प्रकृति जीव को क्या असर करती थी ?

उत्तर—अनंतानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ अनतानुबधी अनत हैं। अनुबध कहे तो रस, तीव्रता जिसमें। जो अनत कर्म वर्गणा का बध करता है, जो अनत ससार का कारण है, जो अनंत ज्ञान सुख आदि गुणों का घात करता है उसे अनंतानुबधी कहते हैं। पर वस्तु को अपनी मान कर उसमें रमण करना व अपने निज स्वरूप को भूलजाना इसका असर है। जैसे बहुत नशे से समझदार मनुष्य भी सार वस्तु को फेंककर असार सग्रह करने लगता है, पीत-ज्वर से उत्तम भोजन भी कड़ुआ लगता है, पीलिए के रोग से सुफ़ेद मोती की माला भी पीली दीखती है, इसी तरह इसके उदय से आत्मिक सुख के स्थान इद्रियजन्य सुखों में ममत्व भावना होती है। इसी के निमित्त से अनादि काल से अपना जीव ससारभ्रमण कर रहा है। अनंतानुबधी चौकड़ी अनतसुखदायी स्वरूपाचरण चारित्र गुण की घात करता है, मिथ्यात्व-

मोहनीय से परवस्तु में ममत्व होता है। विपरीत बुद्धि होकर शरीर भोगादिको अपनी वस्तु मानता है।

मिश्र-मोहनीय कुछ सत्य कुछ असत्य दोनों में ममत्व (अपनायत) पैदा करता है।

समकित-मोहनीय—शुद्ध सत्य (आत्मा) निश्चय में अस्थिरता (शंका, कखादि) दोष उत्पन्न करता है।

(४०) प्रश्न—समकित उत्पत्ति में चारित्र मोह की अनंतानुबंधी चार प्रकृति का अभाव होने से कौनसा चारित्र गुण प्रगट होता है ?

उत्तर—चारित्र का अर्थ रमण करना, विचरना, अनुभव करना है। अनादि से जो परद्रव्य में (विषय, कषाय में) रमण करता था वह अब देश से (कुछ अंश से) निज शुद्ध आत्मस्वरूप में रमण करता है। यह चौथा गुणस्थान से ही शुरू हो जाता है, इसीसे तीन लोक के विषय भोगों के सुख से समदृष्टि के आत्मरमणता का सुख अनन्तगुणा बताया है।

(४१) प्रश्न—तीन दर्शन मोहनीय के अभाव से क्या होता है ?

उत्तर—विपरीत निश्चय, मिश्रनिश्चय व सत्य में कुछ मलीनतायें, इन तीनों दोषों का नाश होकर यथार्थ शुद्ध निजरूप का निश्चय होता है।

(४२) प्रश्न—समकिती जीव अनुकूल प्रतिकूल सयोगों में अभय, अडिग कैसे रहता है ?

उत्तर—समदृष्टि की आत्मा इतनी प्रबल, निर्भय हो-जाती है कि उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। वह इष्ट अनिष्ट सब संयोगों को पुद्गल (जड) की दशा (हालात-पर्याय) जानकर अपने स्वरूप से नहीं डिगता। वह विचारता है कि मैं इन जड़ पदार्थों (पुद्गलों) से भिन्न हू, अकेला अनत ज्ञान, दर्शन आदि गुणस्वरूप हू, विकाररहित हू, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू। ये सब विकार पुद्गल के है तथा शरीर, इद्रिय भोग, परिवार, धन, यश, निंदा, सुख, दु ख के निमित्त सब अनित्य व नाशवान् है, मेरे गुण को न बढा सकते है, न घटा सकते हैं, मैं खुद ही कायर बनकर हर्ष, शोक, राग, द्वेष करके अपने ज्ञान सुखादि गुणों को मलीन दूषित–विकारी करता हू। पहिले अज्ञान था जिससे मैं स्वयं अपने आपको दुखी करता था। अब मैंने सच्चा स्वरूप समझ लिया है जिससे समभाव में ही रहूँगा। मरण तक भी शरीर का नाश है, चेतनराय तो

सदा उसी रूप में रहता, ऐसे विचार करके सदा अभय रहे।

(४३) प्रश्न—रोग तथा मरणभय उत्पन्न होवे तब समदृष्टि क्या विचार करे ?

उत्तर—यह शरीर जड़ है, अचेतन है, हाड़, मांस, लोहू, मल, मूत्र, कीड़े, नसा जाल से भरपूर है। रोग शरीर को नाश कर सकता है। मरण सर्वथा शरीर छूटने को मानते हैं। रोग व मरण चैतन्य का तो कुछ भी नहीं ले सकते हैं। मुझे वेदना होवी, दुःख होता है। मेरे जीवका चारित्र गुण आत्मस्वरूप में रमण करने का था। वह शरीर ममत्व भोग आनद आदि कुकर्मों से दूषित होकर शारीरिक वेदना का भोगी बन रहा है। यदि मैं इस समय ज्ञान, वैराग्य व आत्म-भावना से समभाव रखकर दुःख सहन कर लूँगा तो सदा के लिये इस प्रकार की शारीरिक वेदनाएँ व मरण दुःख छूट जायगा। जैसे लेनदार आया, राजी से कर्ज चुका दिया, नया झगड़ा व कर्ज न किया तो सदा के लिये छुटकारा पाते हैं, इसी प्रकार यह सब दुःख मेरे ही खुद के अज्ञान व विषय सेवन का फल है। अब नया बीज नहीं बोऊंगा तो फल कैसे लगेंगे।

दोहा—सुख दुख जाने जीव सब, सुख दुख रूप न जीव
सुख दुख पुद्गल पिंड है, जड़ता रूप सदीव ॥१॥

रोग पीड़ता देह को, नहीं जीव को खास ॥
घर जले अग्नि थकी, नहीं घर का आकाश ॥२॥

इत्यादिक सुविचारों से सदा आत्मिक अमृत सुख का पान करे।

(४४) प्रश्न—अब सुख दुःख में समताभाव धर सकें, ऐसी शक्ति कब आती है?

उत्तर—जीव अजीवादि नव तत्त्वों का द्रव्य, गुण, पर्याय से ज्ञान करके परवस्तु से मैं भिन्न हूं, ऐसी बारबार अतर उपयोग पूर्वक भावना करने से भेदज्ञान समकित होता है। उसमें सदा परम समतारसका ही पान होता है और रागद्वेष मोह फटकने नहीं पाते।

(४५) प्रश्न—द्रव्य, गुण, पर्याय का ज्ञान करने की शिक्षा कहां दीगई है?

उत्तर—श्री उत्तराध्ययन सूत्र के मोक्ष मार्ग अध्ययन में प्रथम ज्ञान किस बात का करना, ऐसा बताते हुए पांचवीं गाथामें कहा है कि "यह पांच प्रकार का ज्ञान (मति, श्रुति, अवधि, मन, पर्यय व केवल ज्ञान) द्रव्य गुण और पर्याय को जानने का ही है। इस ज्ञान को सब तीर्थंकर

देवों ने ज्ञान कहा है। जहां यह ज्ञान नहीं वहां सम्यग् ज्ञा
नहीं हो सकता, कारण जो वस्तु को बराबर न समझे वह
किस प्रकार सत्य स्वरूप जान सके। श्री अनुयोगद्वा
सूत्र में फरमाया है कि आचार्य महाराज अपने शिष्यों को
सब शास्त्रों का ज्ञान द्रव्य, गुण, पर्याय सहित देवें। चार अनु
योग में द्रव्यानुयोग का अतर उपयोग सहित ज्ञान को निश्चय
ज्ञान कहा है और धर्म कथानुयोग, चरणकरणानुयोग व
गणितानुयोग, इन तीन योगों को व्यवहारज्ञान कहा है।

(४६) प्रश्न—द्रव्य किसको कहते हैं।

उत्तर–(१) गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

(२) जो गुण पर्याय संयुक्त होवे उसे द्रव्य कहते हैं।

(३) जो गुणों का भाजन हो उसे द्रव्य कहते हैं।

(४) जो उत्पन्न होना, विनाश होना (पर्याय अपेक्षा से) व कायम रहना (द्रव्य अपेक्षा से), तीन गुण धरे उसे द्रव्य कहते हैं। जैसे जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य।

(४७) प्रश्न—गुण किसे कहते हैं।

उत्तर—(१) जो हमेशा द्रव्यके पूरे हिस्से व सब हालत में रहे उसे गुण कहते हैं।

(२) जो द्रव्य को बतावे (ओलखावे) उसे गुण कहते हैं। जैसे जीवका गुण, ज्ञान। पुद्‌गल का गुण वर्ण, गंध, रस, स्पर्श

(४८) प्रश्न—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—हालत व अवस्था को पर्याय कहते हैं, जो रूपांतर होवे, पलटती रहे उसे पर्याय कहते हैं।

(४९) प्रश्न—पर्याय के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो। शुद्ध पर्याय व अशुद्ध पर्याय।

(५०) प्रश्न—शुद्ध पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो दूसरे द्रव्य के निमित्त से न हो वह शुद्ध पर्याय (शुद्ध हालत) है।

(२) जो विकार रहित हो सो शुद्ध पर्याय है।

(३) जो सर्वकाल में एक सरीखी परिणमन

करती रहे, शुद्धता का कभी विनाश न होवे सो शुद्ध पर्याय है। जैसे जीवकी शुद्ध पर्याय सिद्ध स्वरूप व केवल ज्ञान, केवल दर्शनादि

(४१) प्रश्न—अशुद्ध पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो दूसरे द्रव्य के निमित्त से हो व अशुद्ध पर्याय है।

(२) जो विकार सहित हो वह अशुद्ध पर्याय है।

(३) जो सर्व काल में एक सरीखी न रहे व विनाशिक होवे वह अशुद्ध पर्याय है। जैसे जीवकी अशुद्ध पर्याय, मनुष्य तिर्यंच आदि व मति ज्ञानादि।

(४२) प्रश्न—शुद्ध पर्याय में जीवकी क्या हालत होती है ?

उत्तर—शुद्ध पर्याय में जीवके चारों ही भाव प्राण शुद्ध होते हैं।

(४३) प्रश्न—प्राण के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो। एक द्रव्य-प्राण, दूसरा भावप्राण। द्रव्य

प्राण के दश भेद हैं। पांच इंद्रिय, मन, वचन, काया, श्वासो-श्वास और आयुष्य; ये द्रव्यप्राण कर्म के निमित्त से जीव को पैदा होते हैं और भाव प्राण के चार भेद हैं। अनत ज्ञान, अनत दर्शन, अनंत सुख, अनत शक्ति, ये चार भाव-प्राण सदा कायम रहते हैं। इन्हीं से जीव तीनों काल में कायम रहता, जीवित रहता है, ऐसा कहा गया है। ससारी जीवों के ये भाव-प्राण राग, द्वेप, मोह से दूषित हो रहे हैं, परतु इनका सर्वथा नाश कभी भी नहीं होता है। द्रव्यप्राण के नाश को व्यवहार में मृत्यु कहते हैं। समदृष्टि मृत्यु समय व हरेक उपसर्ग में भाव-प्राण से आपको अजर-अमर-अविनाशी मानता हुआ अभय (परमानंदी) रहता है। दूसरे के द्रव्य-प्राणों को पीड़ा करने से वह जीव दु ख पाता है। इसी को हिंसा का पाप कहते हैं। इसके फल में खुद को भी पीड़ा दुःख भोगना पडता है। द्रव्यशरीर, मनादि को कष्ट देने से स्व तथा पर का राग, द्वेप, क्लेश, क्रोध, शोकादि होते हैं। इससे ज्ञानादि भावप्राण भी मलीन होते हैं, सो स्व-पर की भाव हिंसा होती है, इसलिये किसी को दुःख न देना चाहिये।

(५४) प्रश्न—दुःख कैसे पैदा होता है ?

उत्तर—भय से दुःख पैदा होता है।

(५५) प्रश्न—भय कैसे होता है ?

उत्तर—प्रमाद से भय होता है।

(५६) प्रश्न—प्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर—"प्र"=अर्थात् विशेष प्रकार से। "माद" =अर्थात् मूढ़ हो जाना, मूर्छित हो जाना, आत्मस्वरूपको भूलकर इन्द्रिय सुख व बाह्य जड़ पदार्थों में ममत्व करना, सुख दुःख मानना, यह "प्रमाद" है।

(५७) प्रश्न—प्रमाद के कितने प्रकार हैं?

उत्तर—पांच प्रकार हैं (१) मद (गर्व) (२) विषय (३) कषाय (क्रोधादि) (४) निद्रा (५) विकथा (स्व पर हित सिवाय की बातें)।

(५८) प्रश्न—प्रमाद को कौन उत्पन्न करता है?

उत्तर—अज्ञान व मिथ्यात्व (विपरीत समझ अर्थात् अघता)।

(५६) प्रश्न—दुःखों को नाश करने का क्या उपाय है?

उत्तर—सम्यग्ज्ञान व सच्ची समझ द्वारा (सम्यक्तिसे) प्रमाद को छोड़ना चाहिये। प्रमाद त्यागनेसे भयका नाश होवेगा और भय का नाश होने से सकल दुःखों का भी

नाश होवेगा और अक्षय सुख (सदा अभय अवस्था) रहेगा।

(६०) प्रश्न—समदृष्टि संसार के काम किस तरह करता है ?

उत्तर—(१) जैसे किसी चोर को कोतवालने काला मुह करके गधेपर बिठाया। वह मनुष्य वह काम हर्ष से नहीं करता किंतु बिना इच्छा के परवश होने से करता है, उसी प्रकार समदृष्टि जीव कर्मरूप कोतवाल की परतंत्रता मे संसार के काम उदासीन (राग द्वेषरहित) भावों से करता है। जैसे धाई माता पुत्र को दूध पाने, रक्षा करे परंतु मनमें उसे अपना निजी पुत्र नहीं मानती, आपको उससे भिन्न भट्टैती सेविका मानती है, इसी प्रकार समदृष्टि संसार में निरक्त रहे, आसक्त न हो।

(२) किसी विकट प्रसंग में तपाये हुए लोहे के पतरों की भूमि पर से किसी मनुष्य को खुले पैर दौड़ना पड़े तो वह उसमें आनंद नहीं मानता, वहां विश्राम नहीं

लेता, इसी प्रकार समदृष्टि जीव विषय कषाय रूपी भावअग्नि से तपायमान संसार प्रवृत्ति को करते समय उनमें आनंद न मानता। वहा विश्राम न लेता। शीघ्र उल्लंघकर सुख-स्थान (संयम) में विश्राम लेता है।

(६१) प्रश्न—समदृष्टि को संसार के काम करते हुए भी कर्मों का बंधन क्यों थोड़ा और लूखा होता है ?

उत्तर—(१) समदृष्टि हरेक काम करने में हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, सत्यासत्य का पूर्ण विचार रखता है और अहित, अलाभ, अन्याय और असत्य को छोड़ता है।

(२) संसार के कामों में शरीर, धन, लोग व सब पदार्थों में स्वामीपने की (मेरी मालकी है ऐसी) बुद्धि नहीं रखता परन्तु जीव की अशुद्ध दशासे रोग की चेष्टा तुल्य प्रवृत्ति करता हू, ऐसा मानता है।

(३) अतररुचि-अभिलाषा पूर्वक भोग सेवन नहीं करता।

(४) प्रत्येक काम में विरक्ति की भावना करता है हरेक

काम करते समय विचारता है, हे चेतन! यह हिंसा, विषय, कषाय तेरे को भयंकर दुःख देंगे। तू इन्हें छोड़, न छूटे तो घटा। तेरा धर्म (स्वभाव) तो हिंसा, विषय, कषाय को सर्वथा छोड़कर ज्ञान, दर्शन, चारित्र में लीन होने का है।

(५) समदृष्टि संसार के काम उदासीन (राग द्वेष रहित) भावों से करता है, जिससे कर्मों का बंधन बहुत मंद होता है, कारण राग द्वेष के निमित्त से ही रसबंध (अनुभागबंध) होता है।

(६) समझू सके पापसे, अणसमझू हरखंत।
वे लूखा वे चीकणां, इण विध कर्म बंधत॥१॥

संसारी प्रवृत्ति करते समय समदृष्टि जीव बड़ा दुःख माने, भय पावे, उसे घटाने का प्रयत्न करे जिससे लूखे कर्म बंधते हैं कि जब अज्ञानी जीव संसारी कामों में हर्ष शोक धरके चिकने कर्मबंध करता है।

सुपुरुषार्थ[१], सत्य अहिंसा, प्रमाणिकता (ईमानदारी), समभाव, गुणानुराग, उदासीनता, क्षमा निरभिमानता, निष्कपटता व निर्लोभिता, इन गुणों का पालन करके व्यापार काम, घरकाम व शरीर-रक्षा करता है जिससे समदृष्टि जीव को कर्मों का बंधन लूखा (शिथिल) व थोड़ा होता है।

१—उत्तम कार्मों मे निरन्तर उद्योगी रहना।

शिक्षा—आज अपन लोग समदृष्टि श्रावक व साधु नाम धराते हैं, परन्तु ऊपर के गुणों की प्राप्ति अल्प है। ऐसा जानकर यदि एसे लोक और परलोक के दुःखों से छूटना होवे तो ऊपर कहे हुए गुण प्रकट करना चाहिये।

(६२) प्रश्न-जीव के चेतनागुण के कितने प्रकार हैं?

उत्तर—दो हैं (१) ज्ञानचेतना (२) अज्ञानचेतना।

(६३) प्रश्न—ज्ञानचेतना किसे कहते हैं?

उत्तर—राग द्वेष मोह रहित शुद्ध आत्मज्ञान (आत्मानुभव) को ज्ञान-चेतना कहते हैं।

(६४) प्रश्न—ज्ञानचेतना कब प्रगट होती है?

उत्तर—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार कर्मों का सर्वथा नाश करने से केवलज्ञान प्रगट होता है। उसे प्रतिपूर्ण ज्ञानचेतना कहते हैं।

(६५) प्रश्न—ज्ञानचेतना की शुरूआत कब से होती है?

उत्तर—अनन्तानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ और तीन दर्शन-मोहनीय—(मिथ्यात्व-मोहनीय, मिश्रमोहनीय, समकित-मोहनीय)। इन सात प्रकृति के त्याग से समकित गुण (आत्मबोध) प्रगट होता है। तब से दूज के चन्द्रवत् ज्ञानचेतना शुरू होती है। वहां से - कुछ अंश से (देश थकी) अतींद्रिय आत्मिक सुख का अनुभव प्रगट होता है।

(६६) प्रश्न—ज्ञानचेतना को प्रगट करने का क्या उपाय है ?

उत्तर—अज्ञान, राग, द्वेष, मोह को घटाकर आत्म भावना चिंतन करने से ज्ञानचेतना प्रगट होती है।

(६७) प्रश्न—अज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो यथार्थ आत्मस्वरूप को न समझे, शरीर इंद्रिय व भोगों में ममत्व कर सुख-दुःख व राग-द्वेष के भाव उत्पन्न करे, वह अज्ञानचेतना है।

(६८) प्रश्न—अज्ञानचेतना के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो प्रकार हैं। एक कर्मचेतना, दूसरी कर्म-फलचेतना।

(६९) प्रश्न—कर्मचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीव्रमोह के उदय से व वीर्यांतराय के क्षयोपशम से राग, द्वेष, मोह में प्रवृत्ति होना सो कर्मचेतना है। इसे कर्म-बंध का परिणाम कहते हैं। यह भाव कर्म है अर्थात् इसीसे अनन्त द्रव्यकर्म (कर्मदल) आत्मा को चिपकते हैं।

(७०) प्रश्न—राग, द्वेष, मोह के कितने भेद हैं ?

उत्तर—आत्मा के सुख (चारित्र) गुण की घातक तेरह प्रकृति (चार कषाये व नव नोकषाय) हैं। उसमें सात प्रकृति रागरूप हैं (१) माया (कपट), (२) लोभ, (३) हास्य, (४) रति, हर्ष, (५) पुरुषवेद (पुरुष

संबंधी विकार स्रावादि), (६) स्त्रीवेद—स्त्री-संबंधी विकार (पुरुष वांछादि), (७) नपुंसक वेद (अतिविकार-हस्तदोष, सृष्टिविरुद्ध कर्म), स्त्रीके विषय उत्पादक शब्द, रूप, स्पर्श या निमित्त मिलते या भोगकी बात सुनते ही वीर्य-स्खलन होना व स्त्री पुरुष दोनों के भोगकी वांछा करना इत्यादि नपुंसक वेदके चिह्न हैं)

शिक्षा—आज विकार बढ़गया है, इसीसे नपुंसकत्व के चिह्न ज्यादा दिखाई देते हैं। जो पुरुषत्व है वह विरलों में है। पुरुष भी इन दोषों से नपुंसक हो जाता है। इस हालत को देखकर विकारों को जीतना व ब्रह्मचर्य गुण बढ़ाकर तामसी खुराक त्याग, व्यायाम, आसन, सत्संग, उत्तम वाचन, सद्भावना और सुरिवाजों से पीछा पुरुषत्व संपादन करना जरूरी है। दवाइयों के धोखे में कभी नहीं आना पौष्टिक दवाई क्षणभर ताक्त देवेगी, आखिर दुगुना विकार जागकर ज्यादा बुरी हालत होवेगी। कुदरती व कायमी पुरुषार्थ सात्त्विक उपायों से मिलता है।

द्वेषकी छः प्रकृति हैं-(१) क्रोध, (२) मान (गर्व), (३) अरति (दुःखित होना), (४) भय (डर), (५) शोक (चिंता), (६) दुर्गंच्छा (अरुचि, निंदा, अभाव)।

मोह की तीन प्रकृति हैं—मिथ्यात्वमोह, मिश्रमोह, समकितमोह।

(७१) प्रश्न—कर्मफलचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—सुख दुःख का भोगना सो कर्मफलचेतना है। कर्म उदय के परिणाम को कर्मफल चेतना कहते हैं।

(७२) प्रश्न—चेतना के ज्ञान करने का सार क्या ?

उत्तर—कर्मचेतना अर्थात् राग, द्वेष, मोह में सब दुःख होते हैं, कारण संसार (जन्म-जरा-मरण) का बीज राग-द्वेष है और कर्मफल अर्थात् सुख दुःख बुद्धि में राग द्वेष होते हैं ऐसा जान इन दोनों अज्ञ नचेतना का त्याग करना चाहिये और ज्ञानचेतना समभाव प्रगट करने से सत्य अविनाशी सुख इस लोक तथा परलोक में सदा प्राप्त होता है।

(७३) प्रश्न—समदृष्टि की क्या विशेषता है ?

उत्तर—वह निर्मोही रहता है। संसार के किसी पदार्थ में ममत्व मोह या स्वामीपन (अपनापन) नहीं धरता, केवल उदासीन (राग, द्वेष रहित) प्रवृत्ति करता है। सदा विषयकषाय प्रवृत्ति घटाता है, पराधीनता से न छूटे तो अंतःकरण से इसका पश्चात्ताप करता है।

(७४) प्रश्न—कर्ता, भोक्ता और ज्ञाता का क्या अर्थ है?

उत्तर—राग, द्वेष, मोह के परिणाम को कर्मचेतना (कर्मबन्धक परिणाम) कहते हैं; यही कर्तापन है अर्थात् इससे जीव कर्म का कर्ता होता है।

इष्ट अनिष्ट संयोग में सुख दु:ख बुद्धि होने को कर्म-फलचेतना (कर्म उदय परिणाम) कहते हैं । यही मूढ़पन है।

राग, द्वेष, मोह व सुखदु:ख बुद्धि रहित उदासीन भाव—समभाव—आत्मानुभव को ज्ञान चेतना कहते हैं। यही ज्ञातापन है।

कर्ता, भोक्ता पनन से बहुत कर्म बंध होता है। ज्ञातापन में कर्मक्षय होते हैं।

(७५) प्रश्न—चारित्रमोह के उदय से समदृष्टि को क्या होता है ?

उत्तर—अल्प इष्ट, अनिष्ट बुद्धि होय, परन्तु ममत्व-भाव—स्वामीपन नहीं होने से तथा भेदज्ञान होने से तुरत पश्चात्ताप कर विरक्त हो जाने, इससे चिकने कर्मों का बंध समदृष्टि का नहीं हो सकता।

(७६) प्रश्न—मिथ्यात्वमोह व चारित्रमोह का जीव पर क्या असर होता है ?

उत्तर—मिथ्यात्वमोह के निमित्त से जीव शरीर, इन्द्रिय भोगादि में मेरेपने की बुद्धि करता है और चारित्र-मोह के उदय से इष्ट अनिष्टबुद्धि (हर्षशोक रागद्वेष) करता है, दोनों के अभाव से वीतराग बन जाता है।

(७७) प्रश्न—भेदज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्यादवाद सहित द्रव्यानुयोग का व्यवहार निश्चय रूप जानकर अपनी निज आत्मा को सकल जीव अजीवादि अन्य द्रव्यों से भिन्न जाने तथा अनुभवे और द्रव्यकर्म (आठ कर्मवर्गणा), भाव कर्म (रागद्वेष, मोह), नोकर्म (शरीरभागादि) में मै और मेरापन की बुद्धि थी, उस विपरीत बुद्धि (मिथ्यात्व) को छोडे आर अनत ज्ञान, दर्शन सहित मैं हूँ, ऐसा शुद्ध आत्मस्वरूप सशय-विपरीत, अन-ध्यवसाय दोषरहित अनुभवे सो भेदज्ञान है। इसको सम्यक्-ज्ञान कहते हैं।

दोहा—भेदज्ञान सो मुक्ति है, कुगति करो किम कोय ॥
वस्तु भेद जाने नहीं, सुगति कहां स होय ॥१॥
भदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर ॥
धाबी अतर आतमा, धावे निजगुण चीर ॥२॥

चौपाई—

भेद-ज्ञान सार जिन पायो, सो चेतन शिवरूप कहायो ॥
भेद-ज्ञान जिनके घट नाहीं, ते जड जीव बॅध जगमाहीं ॥३॥

दोहा—भेद-ज्ञान थी अलगो रहे, तेनी भवस्थिति दूर ।
जनम मरण करसे घणां, रहे ममाग भरपूर ॥
भेद-ज्ञान अभ्यास से, टले मिथ्यात्व दूर ।
समकित सहज आवे सही, वरते आनद पूर ॥

(७८) प्रश्न—स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद का क्या अर्थ है?

उत्तर—स्याद् कहे तो कथंचित्—किसी अपेक्षा से। वाद कहे तो कथन करना। जो वचन किसी अपेक्षा से हो और जिसमें दूसरी अपेक्षाएं भी गौण स्वीकार की जावें, वह स्याद्वाद है।

(७९) प्रश्न—स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद का क्या लक्षण है?

उत्तर—(१) जो व्यवहार और निश्चय दोनों को उचित स्थान पर विधिपूर्वक माने, केवल एक ही पक्ष व्यवहार ही न माने या निश्चय ही न माने।

(२) जो 'हा' और 'ना' की मर्यादा विधिपूर्वक माने जैसे प्रवृत्ति छोड़ने योग्य है। यह निश्चय-सचाई है, परन्तु जहां अशुभ प्रवृत्ति होती हो वहां शुभ प्रवृत्ति आदरने योग्य है। आहार, निद्रा छोड़ना चाहिये परन्तु शरीर नहीं चले, असमाधि होती दीखे तो विवेक पूर्वक मर्यादा से आहार, निद्रा आदि का सेवन करे। ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहां "हा" और "ना" की मर्यादा जरूरी है। एकांत स्थापना या उत्थापना करने से गम्भीर नुक्सान हो जाता है।

(३) जो "ऐसा ही" है यों न माने परन्तु "ऐसा

भी" है माने। जैसे जीव नित्य ही है ऐसा न माने परन्तु जीव नित्य भी द्रव्य की अपेक्षा से है और अनित्य भी मनुष्य तिर्यंच आदि पर्याय (हालत) की अपेक्षा से माने। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ में अनन्तधर्म, अनन्तगुण, अनन्तपर्याय हैं, उन सब का विधिपूर्वक स्वीकार करे। "ही" एकान्तवचन है और "भी" अनेकान्त है।

(४) जो एकान्त ज्ञान से ही या एकांत क्रिया से ही मोक्ष न माने परन्तु ज्ञान और क्रिया दोनों से मोक्ष होती है, ऐसा माने।

(५) जैसे सूर्य के प्रकाश में सब जाति के प्रकाशित दीपक रत्नादि पदार्थों का तेज समा जाता है, वैसे ही स्याद्वाद में सब नय, अपेक्षा, आशय संगृहीत हो जाते हैं।

(८०) प्रश्न—स्याद्वाद का ज्ञान करने से क्या लाभ होता है?

उत्तर—स्याद्वाद से सत्यस्वरूप प्राप्त होता है। स्याद्वाद से ही मिथ्याज्ञान व मिथ्यादर्शन का नाश होकर सम्यक् ज्ञान व सम्यक् दर्शन प्रकट होता है। सब अपेक्षाओं को बराबर समझने से अर्थात् स्याद्वाद का ज्ञान होने से समभाव प्रकट होता है और राग द्वेष, मोह, वैर विरोध आदि का नाश होता है। जहां रागद्वेष खींचतान, मतपक्ष है वहां स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद (सत्य

स्वरूप) नहीं है, परन्तु एकांतवाद अर्थात् मिथ्यात्व है। इसलिये हे चन्द्र, तू हमेशा अपेक्षावाद (स्याद्वाद) को समझकर राग, द्वेष, वैर, विरोध, कलह को छोड़कर प्रशांत भावी बन।

(८१) प्रश्न—समकित (आत्मबोध) रूपी बीज कैसी भूमि में फूलता फलता है ?

उत्तर—जिन जीवों की जीवनभूमि (१) हिंसा, (२) झूठ, (३) चोरी, (४) तीव्र विषयवासना, (५) तृष्णा, (६) अतिक्रोध, (७) अहङ्कार, (८) कपट, (९) लोभ, (१०) कुमद, (११) परनिंदा (१२) स्वप्रशंसा, (१३) कदाग्रह और (१४) अविवेक, ये अनीति के दोष रूपी कंकर कांटे, खड्डे दूर करके समभूमि बनी है और जिसमें मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ, इन चार शुभ भावनाओं का पानी सिंचन हुआ है, ऐसी भूमि में समकित रूपी बीज फूलता फलता है।

(८२) प्रश्न—मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ भावना का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मोक्ष का बीज समकित है और समकित का बीज चार भावना हैं। मैत्री आदि चार गुण प्रगट होने के बाद समकित गुण प्रगट होता है, इसलिये इन चार भाव-

नाओं को हमेशा शुभ व शुद्ध साधन रूप चिंतवन करना परम आवश्यक है।

जीव हमेशा भावना अर्थात् विचार तो करता ही है, परन्तु अशुभ भावना ज्यादा करता है, इसलिये भावना का स्वरूप समझकर शुद्ध भावना का चिंतवन करना चाहिये। इन चार भावना के हरेक के चार चार भेद है।

१ मैत्री भावना-(१) मोहमैत्री-स्त्री, पुत्र, धन भोगादि की बाह्य आनन्द की अपेक्षा से प्रीति, (२) शुभमैत्री-उपकारी सज्जन आदि के प्रति प्रीति भक्ति तथा उत्तम काम में ऐक्य, (३) शुद्ध साधन मैत्री—देव, गुरु, धर्म व ज्ञान, दर्शन, चारित्र के प्रति भक्ति व मैत्री, (४) शुभ मैत्री-अनंत ज्ञानादि निज गुणों में मैत्री-एकता का अनुभव। "हे चेतन! तू ही तेरा मित्र है, क्यों अन्य में राग द्वेष धरता है? (श्री आचारांग सूत्र)"

(२) प्रमोद भावना-(१) मोहजन्य हर्ष-स्वपर को भोगोपभोग की प्राप्ति में आनन्द, (२) शुभ हर्ष-दान, पुण्य, सेवाभाव, नैतिक गुण व सुविद्या, स्व परको प्राप्त होने में हर्ष, (३) शुद्धसाधन हर्ष—सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र का स्व परको प्राप्ति में आनन्द, (४) शुद्धानन्द-आत्मिक सुख, अविकारी, अतींद्रिय, निर्विकल्प निज-सुख में लीन होना।

(३) करुणा भावना—(१) मोहजन्य करुणा—स्व परको भोगोपभोग, धन, वैभव प्रशंसा आदि प्राप्ति न होने से दुखी होना, (२) शुभ करुणा —शारीरिक व मानसिक पीडा से दुखी देख कर करुणा भावना, (३) शुद्ध साधन करुणा—अज्ञान, मिथ्यात्व, विषय, कषाय से स्व परको सदा अनन्त-दुखी होना जान ये दोष त्याग करके सम्यग् ज्ञान दर्शन चरित्र विषयभाव व समभाव गुण प्रकट करना तथा प्रकट कराना, (४) शुद्ध करुणा - स्व स्वभाव (आत्मस्वरूप) में लीन रहना। ज्ञानादि निजगुण की मलीनता ही दुःखहेतु जान आत्मगुणों की शुद्धि करना।

(४) माध्यस्थ भावना—(१) मोहजन्य सम-भाव—लज्जा, भय, लोभ, स्वार्थ या अज्ञानवश शांति धरना, (२) शुभ समभाव—ऐक्य, सहन शीलता, गुणानुराग, गंभीरता के गुण तथा कलह, कुमत, वैरभाव विरोध के नुकसान विचार कर समभाव धरना, (३) शुद्ध साधन समभाव—रागद्वेष करने से भाव हिंसा होती है। मैं शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, मन, वचन, काया, कषाय, कर्म रहित हूँ। मैं अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, शांतिरूप हूं। ऐसी भावना विचार कर समभाव धरना। (४) शुद्ध समभाव—परम समरसी भाव ही मेरा निज

गुण है। मैं क्यों विकार पाऊँ? क्यों राग द्वेष लाऊँ? ऐसा विचार करके निज स्वरूप में लीन होवे।

चारों भावना में मोहजन्य पहिला भेद इस लोक तथा परलोक में दुःखदायी है व पाप बंध हेतु है और दूसरा शुभभेद इस लोक तथा परलोक में बाह्य सुखदायी व पुण्य प्राप्ति का कारण है। तीसरा शुद्ध साधन नामक भेद इस लोक तथा परलोक में बाह्य तथा अभ्यंतर दोनों में सुखदाई व बहुत कर्म क्षय का कारण है। और शुद्ध नामक चौथा भेद इस लोक तथा परलोक में परम सुखदाई व मोक्षप्राप्ति का प्रधान कारण है।

(८३) प्रश्न—समकित (आत्मबोध) गुण सर्वोत्कृष्ट क्यों कहाता है?

उत्तर—जैसे रोगी बहुत काल से दुखी है, जगत् में रोग से मुक्त होने के उपाय हैं, परन्तु क्या रोग है, कौनसा उपाय अकसीर है, ऐसे बोध के बिना वह सदा दुखी रहता है, इसी प्रकार यह आत्मा, जड़संगी (पुद्गलसंगी) बन अनादि काल से दुखी होरहा है, इन दुःखों से छूटने का मार्ग बताना ज्ञान का काम है। मार्ग का निश्चय करना समकित गुण का काम है और मार्ग पर चलना चारित्र का काम है। मार्ग बता भी दिया परन्तु निश्चय नहीं है तो उस पर बराबर अंततक नहीं चल सकते।

चलना भी शुरू किया परन्तु निश्चय किये बिना रास्ते में उलट मार्ग में जा सकते हैं। इसलिये सुमार्ग निश्चय अर्थात् समकित गुण सर्वोत्कृष्ट है और इसे प्रगट करने का उत्कृष्ट पुरुषार्थ करना चाहिये।

काव्य विभाग

अब सम्यक्‌त्व उत्पत्ति का अंतरंग कारण आत्मा का शुद्ध परिणाम है सो कहते हैं —

दोहा—अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय।
मिथ्या गांठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोय॥१॥

अध करण (आत्मा के शुद्ध परिणाम), अपूर्वकरण (पूर्व न हुए ऐसे शुद्ध-परिणाम शुद्धस्वरूप का अनुभव) और अनिवृत्तिकरण (नहीं पलटे ऐसे शुद्ध परिणाम), इन तीन करण रूप जो कोई परिणाम करे उसकी मिथ्यात्वरूप गांठ छिन्नभिन्न होकर समकित (आत्मानुभव) गुण प्रगट होता है।

२ अब सम्यक्त्व के जो आठ स्वरूप हैं उनके नाम कहते हैं—

दोहा—समकित उत्पति चिह्न गुण, भूषण दोष विनाश।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरणों विवरण तास॥२॥

अर्थ—आठ प्रकार मे समकित का विवेचन शास्त्रकारों ने किया है सो आठ द्वार के नाम कहते हैं—

१–समकित, २–उत्पत्ति, ३–चिह्न, ४–गुण, ५–भूषण, ६–दोष, ७–नाश और ८ अतिचार।

३ अब सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं:—

चौपाई–सत्य प्रतीति अवस्था जाकी।
दिन दिन रीति गहे समता की।
छिन छिन करे सत्य को साको।
समकित नाम कहावे ताको॥३॥

अर्थ—जिसको आत्मा के सत्य स्वरूप की प्रतीति उपजती है और प्रति दिन समता गुण चढता जाता है और प्रतिक्षण सत्य कहे तो शुद्ध स्वानुभव का प्रकाश रहता है अर्थात् महानुभूति कायम रहती है, उसे समकित कहते हैं।

४ अब सम्यक्त्व की उत्पत्ति कहते हैं:—

दोहा—कै तो सहज स्वभाव के, उपदेशे गुरु कोय।
चहुंगति सैनी जीव को, सम्यक् दर्शन होय॥४॥

अर्थ–किसी को तो सहज स्वभाव ही से सम्यक्त्व उपजता है और किसी को गुरु उपदेश से सम्यक्त्व उपजता है। ऐसे चारों गति में के मन है जिसको ऐसे (सज्ञी) जीव को सम्यग्दर्शन होता है।

५ अब सम्यक्त्व के चिह्न कहते हैं —

दोहा—आपा परिचै निज विषै, उपजै नहिं संदेह ।
सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह ॥५॥

अर्थ—अपने में आत्म अनुभव करना संशय (अस्थिरता) नहीं उपजती और स्वाभाविक कपट से रहित (सरल) वैराग्य अवस्था हो, ये समकित के चिह्न हैं ।

६ अब सम्यक्त्व के गुण कहते हैं —

दोहा—करुणा वत्सल सुजनता, आतमनिंदा पाठ ।
समता भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥६॥

अर्थ—करुणा, वात्सल्य, सज्जनता, स्वलघुता, साम्य भाव, भक्ति, उदासीनता और धर्म प्रेम ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं ।

७ अब सम्यक्त्व के पांच भूषण कहते हैं —

दोहा—चित प्रभावना, भावयुत, हेय उपादेय वाणि ।
धीरज हर्ष प्रवीणता, भूषण पंच बखाणि ॥ ७ ॥

अर्थ—ज्ञान की वृद्धि करना, ज्ञानवान् होकर हेय और उपादेय उपदेश देना, धीरज धरना संतोषी रहना और तत्व में प्रवीण होना, ये सम्यक्त्व के पांच भूषण हैं ।

सफल-जीवन ।

(ले० प० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ)

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन की पहिली गाथा का भावार्थ

एक तरह से जीवन मिलना महँगा नहीं है । प्राणी को मरने के बाद बिना किसी टके पैसे के जीवन मिल ही जाता है। इस प्रकार का जीवन जितना सस्ता है सफल-जीवन उतना ही बल्कि उससे भी अधिक महँगा है। लाखों मनुष्यों में एकाध ही अपने जीवन को सफल बना पाता है। जीवन मिलना सरल है परन्तु जीवन की सफलता के साधन मिलना मुश्किल है। उत्तराध्ययन में चार बातें दुलभ बतलाई गई हैं जो कि जीवन की सफलता के लिये आवश्यक कही जा सकती हैं।

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मिय वीरयं ।

प्राणी को चार कारणों का मिलना बहुत मुश्किल है। मनुष्यत्व, शास्त्रज्ञान, श्रद्धा और सयम पालन करने की शक्ति।

मनुष्यपर्याय के विषय में जब हम विचार करते हैं तब इसकी दुर्लभता को देखकर हमें चकित होजाना पड़ता है। मुट्ठीभर मनुष्यों के सिवाय संसार में अनन्त जीवराशि पड़ी हुई हैं। आज वैज्ञानिक लोग भी इस बात को मानते हैं कि पानी की जरासी बूंद में भी करोड़ों जीव पाये जाते हैं। इन सब पर्यायों को छोड़ कर कीड़े मकोड़े पशुपक्षी आदि के शरीरों से बचकर मनुष्य होजाना कितना मुश्किल है।

लेकिन यहा पर सिर्फ मनुष्यपर्याय की ही दुर्लभता नहीं

बतलाई गई है। किन्तु मनुष्यत्व की दुर्लभता बतलाई गई है। मनुष्यभव पाजाना एक बात है और मनुष्यत्व प्राप्त करलेना दूसरी बात है। ज्ञानी हुई दुनिया में मनुष्य तो करीब १॥ अर्ब हैं परन्तु मनुष्यत्ववाले मनुष्यों की गिनती अगर की जाय तो वह अंगुलियों पर की जा सकेगी। इसीलिये शास्त्र में मनुष्यभव की दुर्लभता की अपेक्षा मनुष्यत्व की दुर्लभता का कथन किया है। यह बात बड़े मार्के की है।

सच है, मनुष्यभव पाजाने पर भी अगर मनुष्यत्व प्राप्त न किया तो मनुष्यजीवन किस काम का? परन्तु यहां पर प्रश्न यह है कि मनुष्यत्व आखिर है क्या? जिसे न पाने पर मनुष्य-जन्म ही व्यर्थ माना जाता है।

मनुष्यभव मिलने पर मनुष्य का आकार मिलता है परन्तु मनुष्यत्व के लिये आकार की नहीं किन्तु गुणों की आवश्यकता है। एक कवि का कहना है कि जब तक गुणियों के भीतर मनुष्य की गणना न हो तब तक उसकी माता पुत्रवती ही नहीं है।

'गुणिगणगणनारंभे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम ॥ १ ॥

अर्थात् गुणी लोगों की गिनती करते समय जिसके नाम पर अंगुली न रक्खी गई अर्थात् जिसका नाम न लिया गया उस पुत्र से अगर कोई माता पुत्रवती कहलावे तो कहिये वन्ध्या किसे कहेंगे?।

इससे साफ मालूम होता है कि श्रेष्ठ गुणों को धारण करनेवाला ही मनुष्य है। बाकी तो मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्याकार प्राणी हैं।

मनुष्य शब्द का एक अर्थ यह भी किया जाता है कि "मनु" की सन्तान है वह मनुष्य है। यद्यपि मनु की सन्तान सभी हैं लेकिन मनु की संतान होने का गौरव धारण करने वाले थोड़े हैं। सच्ची सन्तान तो वही है जो अपने पूर्व पुरुषों का गौरव धारण कर सके। मनु उन्हें कहते हैं जो युग निर्माण करते हैं। अर्थात् समाज की गिरी हुई हालत को उठा कर युगान्तर उपस्थित कर देते हैं। जैन शास्त्रों में मनुओं का (कुलकरों का) जो उल्लेख मिलता है उस से साफ मालूम होता है कि उनने युग (कर्मभूमि) की आदि में समाज की आवश्यकता को पूर्ण किया था। आज भी जो मनुष्य, समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है समाज में युगान्तर उपस्थित करता है वह मनुष्य है, वही मनु की सच्ची सन्तान है।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में इतनी शक्ति या योग्यता नहीं हो सकती। फिर भी प्रत्येक मनुष्य मनु की सतान होने के गौरव की रक्षा कर सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक ही मनुष्य युगान्तर उपस्थित कर दे। इमारत सरीखे साधारण कार्य को भी एक ही कारीगर नहीं बना पाता फिर युगान्तर उपस्थित करना तो बड़ी बात है। हां! इतना हो सकता है कि हम उनके लिये कुछ भी कर गुजरें। अगर हम एक ईंट भी जमा सके तो भी कार्यकर्ता कहलायेंगे। मनु का कार्य कर सकेंगे। यही तो मनुष्यत्व है।

एक दूसरा कवि मनुष्यत्व का विवेचन इन शब्दों में करता है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च। सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ॥
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो। धर्मेण हीना पशुभिः समाना ॥

पढ़कर जो इस रहस्य को समझ सकते हैं उन्हें 'श्रुति' दुर्लभ नहीं है। किन्तु जो लोग शास्त्रों का बोझा ढोकर के भी उसके रहस्य को नहीं समझते हैं 'श्रुति' दुर्लभ है। अगर शास्त्रों के पढ़ने से ही 'श्रुति' सुलभ होजाती तो उत्तराध्ययन सूत्र में चार दुर्लभों में 'श्रुति' दुर्लभ न बताई जाती।

तीसरी दुर्लभ वस्तु है श्रद्धा, यों तो श्रद्धा का राज्य सारे संसार में है। श्रद्धा के मारे दुनिया परेशान है और 'सत्य' मारा मारा फिरता है। लेकिन सच पूछा जाय तो यह श्रद्धा का फल नहीं है। श्रद्धा तो दिव्य गुण है। संसार में यह अंधेर मचाया है अन्धश्रद्धा ने। अन्धश्रद्धा के फन्दे में पड़कर मनुष्य, विवेकशून्य बन गया है। उसने मनुष्यत्व को भुला दिया है। वह अत्यन्त संकुचित बन गया है। यह अन्धश्रद्धा सुलभ है। लेकिन श्रद्धा दुर्लभ है। वह सम्यग्ज्ञानपूर्वक होती है। वह प्रत्यक्ष अनुमान के विरुद्ध नहीं है। श्रद्धा शब्द का वास्तविक अर्थ है आत्मविश्वास। आत्मा अनंत शक्तिशाली है। वह अनन्त कर्म वर्गणाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के विश्वास से जो कर्मक्षेत्र में कूद पड़ते हैं। अनंत बाधाएं और अनंत विघ्न जिनके विश्वास को हटा नहीं सकते वही सच्चे श्रद्धालु हैं। जो कुलजाति आदि की पर्वाह न करके कहते हैं—

"दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्॥

"कुल में जन्म मिलना दैव के आधीन है, लेकिन पुरुषार्थ तो मेरे आधीन है" वे ही श्रद्धालु हैं। जैन-धर्म यह नहीं कहता कि तुमको शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है। मुनि बनने का अधिकार नहीं है। वह अधिकारों का

नहीं देता। बल्कि कहता है कि आत्मा को पहिचानो और कुछ कर सकते हो करो। वह स्वप्न में भी नहीं विचारो मुझे इस बात का अधिकार है या नहीं। तुच्छ से तुच्छ, नीच से नीच प्राणी को धर्म पालन करने का अनन्त अधिकार है। जो उन अनन्त अधिकारों और आत्मा की अनन्त शक्ति पर विश्वास रखता है वही सच्चा श्रद्धालु है।

चौथी दुर्लभ वस्तु है संयमशक्ति। संसार में यह पदार्थ सबसे अधिक दुर्लभ है। परंतु जितना ही अधिक दुर्लभ है लोगों ने इसे उतना ही अधिक खिलवाड़ की वस्तु बना रक्खा है। जिन लोगों में मनुष्यत्व नहीं, ज्ञान नहीं, श्रद्धा नहीं वे संयमी बनने की डींग हांकते हैं। संयम की जैसी मिट्टी पलीद हुई है वैसी किसी की नहीं हुई है।

संयम के गौण साधनों को संयम समझना सब से बड़ी भूल है। उपवास, रसत्याग, अनेक तरह के वेष, स्त्री पुरुषों का त्याग आदि संयम के साधन हो सकते हैं परंतु ये स्वयं संयम नहीं हैं। फिर संयम क्या है और संयमी कौन है?

संयम है मनको वशमें रखना। कषायों को दूर रखना। जो मनुष्य हमारा बड़ा से बड़ा अनिष्ट कर रहा हो उस पर भी जिसे क्रोध नहीं आता, जिसे अपनी विद्वत्ता तथा ऋद्धि का घमण्ड नहीं है, जो अपनी पूज्यता का भी घमण्ड नहीं करता, जो यश का भिखारी नहीं है, जिसके हृदय में ईर्षा नहीं है, जो दूसरे के यश को सह सकता है, जो फूट का शत्रु हो, विश्वप्रेम ही जिसकी रागवृत्ति है, जो छल कपट से दूर है, जिसने बड़ी से बड़ी ऋद्धि को मिट्टी के समान समझा है, जो

उदारता का भंडार है, पापियों को देखकर जो घृणा न करके दया करता है, विरोधी के साथ भी जो मित्र जैसा वर्ताव करता है। जो सहनशीलता का घर है, वही संयमी है, वही साधु है। वही जगत् के लिये प्रातःस्मरणीय है। परन्तु ऐसा संयम मिलना मुश्किल है। तपस्या का भेष-धारण करने वाले (साधु) भारत में करीब ६० लाख व्यक्ति हैं उनमें ऐसे कितने हैं जिनकी कषाय पानी में खींची गई लकीर के समान शीघ्र ही विलीन होजाती हों। जिनमें सच्चा त्याग और सच्ची उदासीनता हो? ऐसे व्यक्ति अंगुलियों पर नहीं तो अंगुलियों के पोरों पर जरूर गिने जा सकते हैं इसीलिये उत्तराध्ययन में संयम को दुर्लभ कहा है।

इन चार दुर्लभ वस्तुओं को जो पा सका है उसीका जीवन सफल है।*

(जैनप्रकाश)

---

* इस लेख के संग्रह करने के लिये जैन प्रकाश व पंडितजी ने सहर्ष अनुमति दी है, जिसके लिये हम आपका उपकार मानते हैं। —व्यवस्थापक

"समकित" पर पूर्वाचार्यों के वचनामृत

(चौपाई तथा दोहे)

सुन समकित स्वरूप की बातें । मिटे मोह की सत्ता जातें ।
ओग साध सिद्धान्त विचारे । आतमगुण परगुण निरवारे ॥ १ ॥

सम्यक्त्व औषध लगे, मिटे कर्म को रोग ।
कोयला छोड़े कालिमा, होत अग्नि संयोग ॥ २ ॥

समकित रूपी चांदनी, जिहं घट में परकाश ।
तिहं घट में उद्योत है, होत तिमिर को नाश ॥ ३ ॥

समकित रूप अनूप है, जो पहिचाने कोय ।
तीन लोक के नाथ की, महिमा पावे सोय ॥ ४ ॥

कूकस विषय विकार सम, मत भक्ष मूढ़ गँवार ।
समकित रस तु चाखिले, गुरु मुख करि निर्धार ॥ ५ ॥

मन वच तन थिरते हुए, जो सुख समकित माँहि ।
इन्द्र नरेंद्र फणीन्द्र के, ता समान सुख नाहिं ॥ ६ ॥

समकित में प्रभु बनत है, समकित सुख का मूल ।
समकित चिन्तामणि तजी, मति भटक कहुँ भूल ॥ ७ ॥

बिन सम्यक्त्व विचार के, तू जंगल को रोज ।
मिथ्या यों ही पचत है, क्यों न करे अब खोज ॥ ८ ॥

समकित के जाने बिना, मति भूले ज्यों स्वान ।
सोच गडरिया ख्यार तजि, अब आपो पहिचान ॥ ९ ॥

जगत मोह फांसी प्रबल, करे न सत्य उपाय ।
कर सगत सम्यक्त्व की, सहज मुक्त हो जाय ॥ १० ॥

अति अगाध संसार नद, विषय नीर गम्भीर ।
समकित बिन पार न लहे, कोटि करहु तदबीर ॥ ११ ॥

जैन दर्शन मे
तत्त्व-मीमांसा